प्रेम का पापी

मिस्टर श्यामलाल देहली के विख्यात बैरिस्टर थे, बड़े ही सुन्दर, सुडौल और पूरे अप-टुडेट। उनका विवाह अमृतसर के रईस पण्डित शिवचन्द्र की कन्या रूपवती के साथ हुआ था। रूपवती का म्याना क़द था, गोरा रंग, बड़ी सुन्दर और सलोनी आकृति। उससे जो मिलता वही उसके गुणों की प्रशंसा करता, परन्तु उसमें एक दोष भी था। वह ओछी न थी। हृदय-मन्दिर में पति की पूजा करती थी, परन्तु मुख से प्रेम का एक भी वचन न कह सकती थी। वियोग की घड़ियाँ कितनी कड़वी और दुखदायिनी होती हैं। इस बात को अनुभव करती थी, परन्तु पति के सम्मुख प्रकट न कर सकती थी।

परन्तु श्यामलाल की प्रकृति इससे विपरीत थी। वे सांसारिक मनुष्य के सामने प्रेम-प्रतिज्ञा, स्नेह के वचन और प्यार की बातें मुँह से सुनने के आकांक्षी थे। उनकी प्रकृति बहुत रसीली थी, प्रायः मुक़दमों की फ़ाइलें मेज़ पर छोड़कर अन्दर चले जाते और रूपवती से बातें करने लगते। उसके कोमल हाथ अपने हाथों में लेते। उसके मुख की ओर देखते, और प्रेम के दफ़्तर खोल देते। कहते प्रिये! मैं सोता हूँ तो तुम्हारे स्वप्न देखता हूँ। जागता हूँ, तो तुम्हारी बाबत सोचता हूँ। कचहरी में तुम्हारी याद मेरा साहस बढ़ाती है; नहीं तो कई अभियोग बिगड़ जाएँ। मैं तुम्हें अपने मन की पूरी शक्ति से प्रेम करता हूँ। परन्तु तुम हो कि पत्थर की मूर्त्ति के समान होंठ तक नहीं हिलातीं। कहो तो सही, तुमको मुझसे कितना प्रेम है।"

रूपवती कुछ कहना चाहती, परन्तु लज्जा मुँह बन्द कर देती। फिर यत्न करती, परन्तु असफल रहती। अन्ततः उसका मुँह लाल हो जाता, मानो उससे कोई अपराध हो गया हो। तब वह अपने प्रेम-भरे नयन पति के मुख पर गाड़ देती, और जीभ का काम नेत्रों से लेने का यत्न करती। श्यामलाल कुछ न समझते, परन्तु रूपवती हँसकर सिर झुका लेती, और धीरे से उत्तर देती "क्या आपका काम समाप्त हो गया?" इस पर श्यामलाल सटपटाकर बाहर निकल जाते और काग़ज़ों को भूमि पर पटक देते।

इसी प्रकार कई दिन गुज़र गये, श्यामलाल का चित्त व्याकुल रहने लगा। रूपवती उनसे हृदय से प्यार करती थी, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं, परन्तु श्यामलाल को इससे सन्तोष न था। वे इतने हार्दिक प्रेम के इच्छुक न थे जितने प्रेम के वचन सुनने के! प्रायः सोचते, ऐसी सुन्दर स्त्री पाकर भी आनन्द न मिला। चाँदने पात्र में इतना अँधेरा होगा, इसकी आशा न थी। रूप देखकर रीझ गये थे, परन्तु अब भूल का अनुभव हुआ। वे पत्नी माँगते थे, परन्तु उनको देवी मिली, जिसमें भक्ति थी, श्रद्धा थी, परन्तु चंचलता और तरलता न थी।

(२)

रूपवती की जिह्वा में लज्जा थी, उसकी आँखें उससे दसगुना अधिक तेज थीं। बात को तत्काल भाँप लेती थी। जब श्यामलाल का चित्त डाँवाडोल हुआ, और आँखें प्रेम के सौदे में लीन हुईं, तो रूपवती सब कुछ समझ गई। उसकी निद्रा खुली, परन्तु उस समय जब कि समय हाथ से निकल चुका था। परन्तु फिर भी उसकी बातचीत में अन्तर न आया।

सावन के दिन थे। श्यामलाल ने रूपवती से कहा—"कहो तो झूला डलवायें, चलोगी?"

रूपवती ने उत्तर दिया 'यहीं हार्मोनियम न ले आओ। इतनी दूर कौन जायगा।'

"तुम कुछ गाकर सुनाओगी?"

"यह कैसे हो सकता है।"

"मैं प्रेम का पुजारी हूँ। सावन के दिनों में बाग़ीचे में सौन्दर्य्य खिलता है, वहाँ जाने को दिल अधीर हो रहा है।"

"तुम प्रेम करते हो ? किसे।"

"सारे संसार में केवल तुम्हें।"

"तो आप हो आयें, मैं मनाही नहीं करती।"

श्यामलाल निराश होकर चले गये। कुछ समय पश्चात् रूपवती ने मन में सोचा—मैंने अच्छा नहीं किया। पता नहीं, उनके मन में कौन कौन सी उमंगें उठ रही थीं। उन सब पर पानी फिर गया। किस उत्साह से आये थे, परन्तु मेरी रुखाई ने उदास कर दिया। मेरा भला किस युग में होगा।

यह सोचकर उसने नौकर को बुलाया और कहा "मोटर तैयार करो, मैं मोहनबाग़ जाऊँगी।"

नौकर ने उत्तर दिया "मोटर बाबू जी ले गये हैं।"

"बन्द बग्घी है ?"

"वह स्टेशन पर गई है ?"

"ताँगा ?

"वह बेकार पड़ा है।"

रूपवती ने सोचा। मुझे उनको मनाना है, तो बग्घी की क्या आवश्यकता है। पैदल चलूँगी और अपने अपराध की क्षमा माँगूँगी। मेरा अभिमान उन्होंने अब तक निभाया है, परन्तु मैंने उनकी क़द्र नहीं की। आज निराशा उनके नेत्रों से टपक रही थी, यह तो हद हो गई।

इतना सोचकर उसने एक सामान्य-सी साड़ी पहनी और नौकर को साथ लेकर मोहनबाग़ को रवाना हुई। परन्तु वहाँ जाकर देखा तो उसकी आँखें खुल गईं। श्यामलाल प्रेम के मद में मतवाले हुए सौन्दर्य की पूजा में लीन थे। रूपवती के कलेजे में मानो किसी ने बर्छी उतार दी। उलटे पाओं वापस आई, और चारपाई पर लेट गई।

(३)

रूपवती हँसती भी थी और रोती भी थी। हँसती इसलिए थी कि श्यामलाल दिखावे के झूठे प्रेम पर लट्टू थे, परन्तु सच्चे प्रेम से नितान्त अनभिज्ञ। जिस प्रकार अबोध बालक छाछ को दूध से अच्छा कहकर समझता है कि मैंने

बुद्धिमत्ता का काम किया, इसी प्रकार श्यामलाल ने रूपवती के सच्चे प्रेम के रहस्य को न पाकर झूठे प्रेम की बातों में मन लगाया। रोती इसलिए थी, कि मैंने अपना सर्वस्व लुटा दिया, परन्तु होश तब आया जब घर ख़ाली हो गया। पति की यह अवस्था देखकर उसका मन टूट गया, और वह ऐसी बीमार हुई कि बचने की आशा न रही। तथापि उसे चिन्ता न थी, क्योंकि अब वह मरने में ही शांति ढूँढ़ती थी और जीवन का एक एक क्षण उसे दूभर प्रतीत होता था।

एक दिन रात के समय श्यामलाल सोये हुए थे कि झटके के शब्द से बिजली का पङ्खा बन्द हो गया। रूपवती जाग रही थी, उसमें उठने की शक्ति न थी। परन्तु स्वामी की निद्रा में बाधा न पड़े, इस विचार से जैसे तैसे उठी, और ताड़ का पङ्खा लेकर श्यामलाल को झलने लगी। इससे श्यामलाल की आँख खुल गई, परन्तु वे चुपचाप पड़े रहे। रूपवती अपने निर्बल हाथों से पंखा झलती रही, बहुत देर तक झलती रही।

सहसा श्यामलाल के गाल पर जल के बिन्दु गिरे। उन्होंने चौंककर आँखें खोल दीं, और रूपवती का हाथ पकड़ लिया—अधीर होकर बोले :—

"रूपवती ! रूपवती !! रोती क्यों हो ?"

रूपवती के हृदय को प्रेम की इस बेपर्दगी पर आघात पहुँचा। साथ ही यह विचार भी आया कि जीवन के अधिक दिन शेष नहीं हैं। सिर झुकाकर बोली "अपने भाग्य को।"

"बेवकूफ़ हो, तुम बच जाओगी।"

"यह असम्भव है।"

"क्यों ?"

"जीने की इच्छा ही नहीं।"

श्यामलाल के शरीर से पसीना छूटने लगा। अपने कुकर्म नेत्रों के सामने आ गये, तो भी साहस करके बोले "तुम्हें यह क्या हो गया है ?"

रूपवती बैठी थी, तनकर खड़ी हो गई और कहने लगी। "मैं भारतीय स्त्री हूँ। भारतीय स्त्री पति के लिए अपना सब कुछ छोड़ सकती है, परन्तु पति को किसी मूल्य पर भी देना स्वीकार नहीं कर सकती। जब तक तुम मेरे थे, मेरा जीवन दूध और मिसिरी की धार थी, पर तुमने उसमें विष मिला दिया है।

उसे मैंने आज तक छिपाये रखा है, परन्तु अब छिपाने की आवश्यकता नहीं। मेरे अभिमान तुम हो। जब तुम ही छिन गये तो अभिमान कैसा? और जब अभिमान न रहे, तो जीवन किस काम का, परमात्मा अब तो उठा ले, यही प्रार्थना है।"

श्यामलाल के कलेजे में किसी ने घूँसा मार दिया। घुटने टेककर बोले :—

"मैं तुम्हारे प्रति उपेक्षा करने का अपराधी हूँ, पर अब यह बात न होगी। एक बार क्षमा कर दो।"

इस समय श्यामलाल के मुखमण्डल पर निर्दोषिता का रङ्ग झलक रहा था, इसलिए रूपवती को बहुत प्यारे मालूम हुए। उसने चाहा कि मौन रहूँ, परन्तु न रह सकी। काँपते हुए हाथ बढ़ाकर बोली "प्यारे....."

इस एक शब्द में प्रेम की पूर्ण कहानी छिपी थी। श्यामलाल पर जादू हो गया। यही वस्तु थी, जिसके लिए वे दिन-रात तड़पते थे, और यही वस्तु थी, जो उन्हें प्राप्त न होती थी। प्रेम से अधीर होकर उन्होंने रूपवती को गले से लगा लिया। इससे पहले ऐसे अवसरों पर रूपवती सिर झुका लेती थी, परन्तु आज उसने प्रेम के टूटे-फूटे वाक्यों से उनकी चिरकालिक कामनाओं को पूरा कर दिया। श्यामलाल स्वर्गसुख में लीन हो गये।

रूपवती ने समझा अब अवस्था बदल गई है, बच रहूँ तो अच्छा है। श्यामलाल ने सोचा, ऐसी स्त्री संसार में न मिलेगी, मर गई तो क्या होगा। इस विचार से वे उसकी चिकित्सा अधिक ध्यान से करने लगे। रूपवती स्वस्थ होने लगी, परन्तु मनुष्य कुछ सोचता है, परमात्मा कुछ करता है। रूपवती दिन पर दिन चंगी हो रही थी, कि भाग्य ने फिर पाँसा पलट दिया।

साँझ का समय था। रूपवती चारपाई पर बैठी सब्ज़ी कतर रही थी कि नौकर ने डाक लाकर मेज़ पर रख दी। इसमें से एक पत्र के ऊपर हस्ताक्षर किसी स्त्री के से थे। रूपवती को कुछ सन्देह हुआ। उसने सब्ज़ी छोड़कर पत्र खोला, सन्देह निश्चय के रूप में बदल गया। श्यामलाल का हृदय डोल चुका था; यह उसका प्रबल प्रमाण था।

श्यामलाल घर वापस आये तो रूपवती के मुख पर मुर्दनी छाई हुई थी। उन्होंने बहुत चाहा कि कारण पूछें, परन्तु रूपवती ने कोई उत्तर न दिया।

अर्धरात्रि तक मनाने का प्रयत्न करते रहे। परन्तु रूपवती ने सुना अनसुना कर दिया। अन्त में वे थककर सो गये, परन्तु एक बजे के लगभग नौकर ने जगाकर कहा "बीबीजी की अवस्था बहुत बिगड़ी हुई है, उठकर देख लीजिए।"

श्यामलाल घबराकर उठे और आँखें मलते मलते बोले "क्या है ?"

"दशा अच्छी नहीं।"

श्यामलाल ने पत्नी को झुककर देखा तो खून जम गया। घबराकर बोले—"रूपवती ! क्यों, क्या है, डाक्टर बुलाऊँ ?"

रूपवती की अवस्था बहुत ही बिगड़ रही थी, रुक-रुककर बोली "अब समय नहीं है।"

"अब समय नहीं है, क्यों ?"

रूपवती ने इशारे से नौकर को बाहर भेज दिया, और बोली "मैंने विष खा लिया है।"

श्यामलाल की आँखें खुली रह गईं, चकित से होकर बोले "यह क्यों ?"

"मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकती।"

श्यामलाल कुछ और न पूछ सके। पापी के पाप काँपते हैं। रूपवती ने कहा "एक प्रार्थना है।"

श्यामलाल ने भर्राये हुए स्वर में उत्तर दिया "जो चाहता है, छत से कूद-कर जान दे दूँ।"

"नहीं, अन्तिम बार मुझे प्यार कर लो, तुम्हें प्यार करती हुई मरूँ, यही मेरी मनोकामना है।"

श्यामलाल ढाड़ें मार-मारकर रोने लगे। रूपवती ने कहा "अब रोने से क्या होगा होश करो।"

श्यामलाल ने उस खाँड़ के खिलौने को प्यार किया। रूपवती ने भींच-भींचकर श्यामलाल को गले लगाया और थककर बोली, "अब शरीर में आग लग गई है। विष ने अपना असर आरम्भ किया।"

श्यामलाल चुपचाप बैठे रहे, परन्तु उनकी आँखों में आँसू भरे थे। रूपवती उनकी गोद में सिर रखे हुए चल बसी।

श्यामलाल मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। वह उसे बीमार देखकर सँभले रहे थे, पर मरे हुए देखकर उनका धीरज जाता रहा।

(४)

कहते हैं किसी चीज़ के मूल्य का उस समय पता लगता है, जब वह पास न रहे। रूपवती जब तक जीती थी श्यामलाल की दृष्टि में उसका कुछ मूल्य न था। मगर जब वह मर गई तो उसके गुण याद आने लगे। श्यामलाल ने रूपवती को खोकर उसका मूल्य जाना। इतना ही नहीं उनको उससे भी—जिसके कारण रूपवती ने अपना जीवन अपने पति पर निछावर कर दिया था, घृणा हो गई। यहाँ तक कि उसका मुँह तक भी न देखते थे। जिस प्रकार मनुष्य अत्यधिक मिठाई खाने के कारण रोगी हो जाता है और उससे नाक मुँह चढ़ाने लगता है, इसी प्रकार श्यामलाल श्यामा से घृणा करने लगे। यद्यपि इसमें उसका रत्ती भर भी दोष न था।

परन्तु उनकी यह अवस्था अधिक समय तक स्थिर न रह सकी। ज्यों ज्यों समय गुज़रता गया, रूपवती की स्मृति पुरानी होती गई। श्यामलाल की प्रवृत्ति श्यामा की ओर झुकने लगी। उसके माता-पिता ने यह हाल देखा तो फूले न समाये और वर्ष से पहले-पहल उनके साथ श्यामा का विवाह कर दिया।

(५)

उपरोक्त घटना को दो वर्ष बीत चुके थे। वही सावन के दिन थे। प्रकृति हरे रंग का लिबास पहरे विलास कर रही थी। आकाश पर बादल मँडला रहे थे। पृथ्वी पर नदियाँ दौड़ती थीं। यह वही ऋतु है, जब सौंदर्य निखरता है और प्रेम का देवता पुष्पों के बाण छोड़ता है। जब विरहिणी के हृदय में हूक उठती है और वह परदेसी पिया की याद में बीमारी का बहाना करती है। जब भामिनी चंदन के पटड़े पर झूलना झूलती है और प्रेमी जन मल्हार का तराना छेड़ते हैं। जब कवि के हृदय का स्रोत खुलता है और चित्रकार की लेखनी किसी रंगीन दृश्य के लिए अधीर होती है।

ऐसी प्यारी प्यारी ऋतु ख़ाली कैसे छोड़ी जा सकती थी, श्यामलाल अपनी नवीना स्त्री श्यामा के पास गये और बोले—

"श्यामा ! झूला डलवाऊँ, बाग़ चलोगी !"

श्याम ने मुस्कराकर उत्तर दिया "वहाँ क्या है ?"

"सावन के दिनों में बाग़ में सौन्दर्य खिलता है, मैं प्रेम का पुजारी हूँ। वहाँ जाये बिना मन नहीं मानता।"

श्यामा ने श्यामलाल की ओर कनखियों से देखते हुए कहा "तुम प्रेम किस को करते हो।"

"सारे संसार में केवल तुम्हें।"

श्यामा ज़ोर से हँसी और हँसकर बोली 'झूठ'।

ठीक उसी समय दीवार से एक चित्र गिरा और उसका चौखटा और शीशा दोनों टूट गये। उसके बाहर मेनका और विश्वामित्र का चित्र था, परन्तु पीछे रूपवती का चित्र था। इसे श्यामलाल ने सावधानी से छिपा रखा था कि श्यामा की उस पर दृष्टि न पड़ जाय। श्यामलाल को उसे देखते ही वह दिन याद आ गया जब यही शब्द उसने रूपवती से कहे थे। सोचने लगे, मेरा प्रेम कैसा ओछा है। वह हार्दिक भाव से मुझे चाहती थी, परन्तु मैंने उसका ख़्याल न किया। मैं शब्दों में प्रेम को ढूढ़ता था, परन्तु वह इससे कितनी ऊँची थी। दो चार दस मिनट बीत गये। श्यामलाल चित्र की ओर टकटकी लगाकर देखते रहे और तब धीरे से बोले "मैं प्रेम का पापी हूँ।"

श्यामा ने यह देखा तो डर गई और आगे बढ़कर कहने लगी 'क्यों ? क्या हुआ है, कुशल तो है ?'

परन्तु श्यामलाल इस संसार में न थे। पागलों की नाईं बोले—

"मैं प्रेम का पापी हूँ।"

"क्या कह रहे हो ?"

"मैं प्रेम का पापी हूँ।"

श्यामा ने डाक्टर बुलवाये परन्तु कुछ लाभ न हुआ। श्यामलाल की दशा दिन पर दिन बिगड़ती गई। अंत में एक दिन जब श्यामा उनकी शय्या के

पास सो रही थी तो श्यामलाल ने हँसकर कहा "रूपवती तू आ गई, तुझे मेरा इतना क्यों ख़्याल है। मैं तो प्रेम का पापी हूँ।"

श्यामा चौंक उठी। उसने घबराकर श्यामलाल की नाड़ी पर हाथ रखा। वह बहुत धीमी थी। पाँव टटोले, वह ठण्डे थे। उसने सिर पीट लिया। परन्तु श्यामलाल का रोग रोग न था, मृत्यु का सन्देशा था। उसी रात को प्रेम का पापी अनन्त प्रेम के पुण्यस्थल को प्रयाण कर गया। पर कहते हैं, उस मकान से अब तक आवाज़ आती हैं "मैं प्रेम का पापी हूँ।"